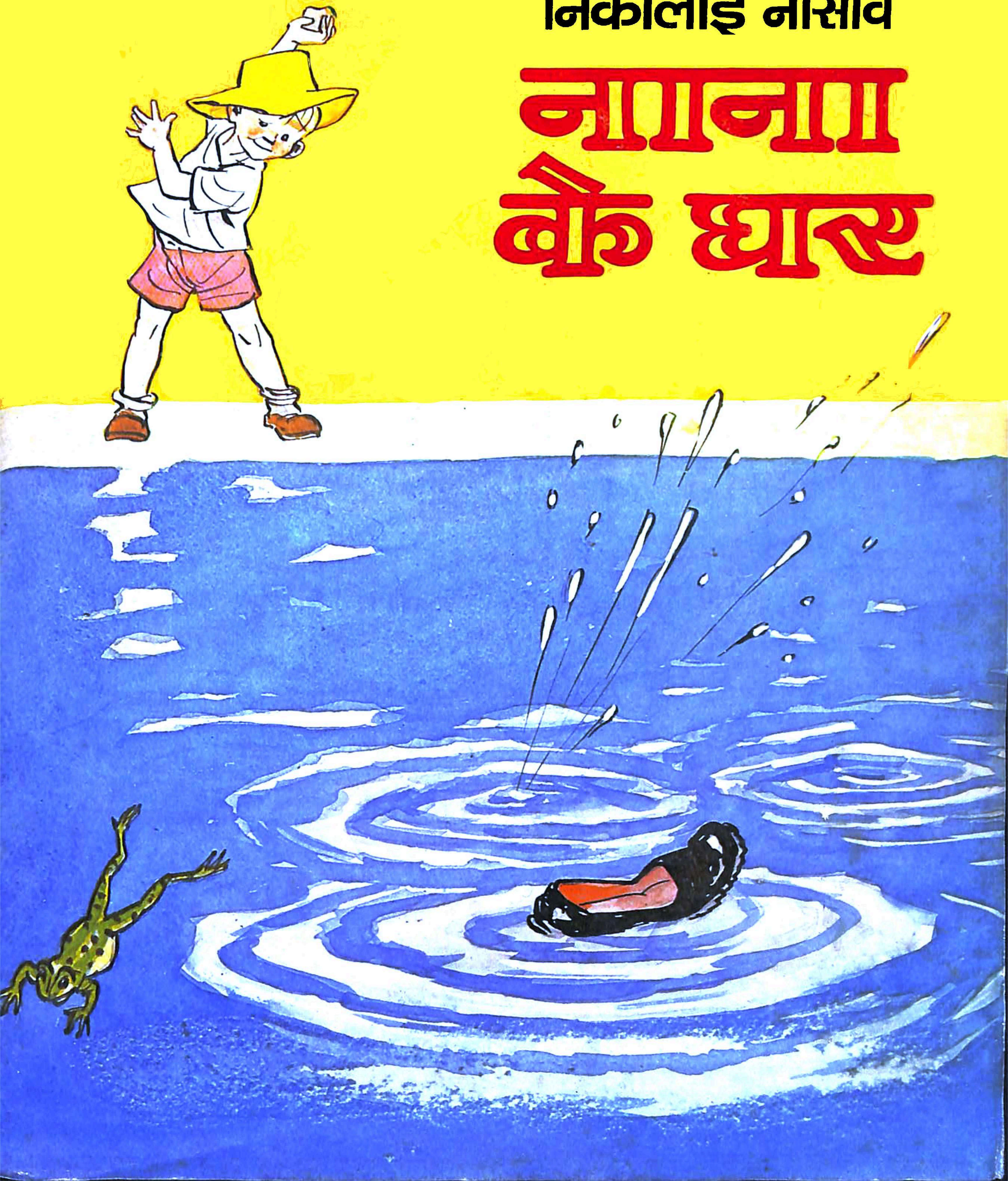
निकोलाई नोसोव

नाना के घर







निकोलाई नोसोव

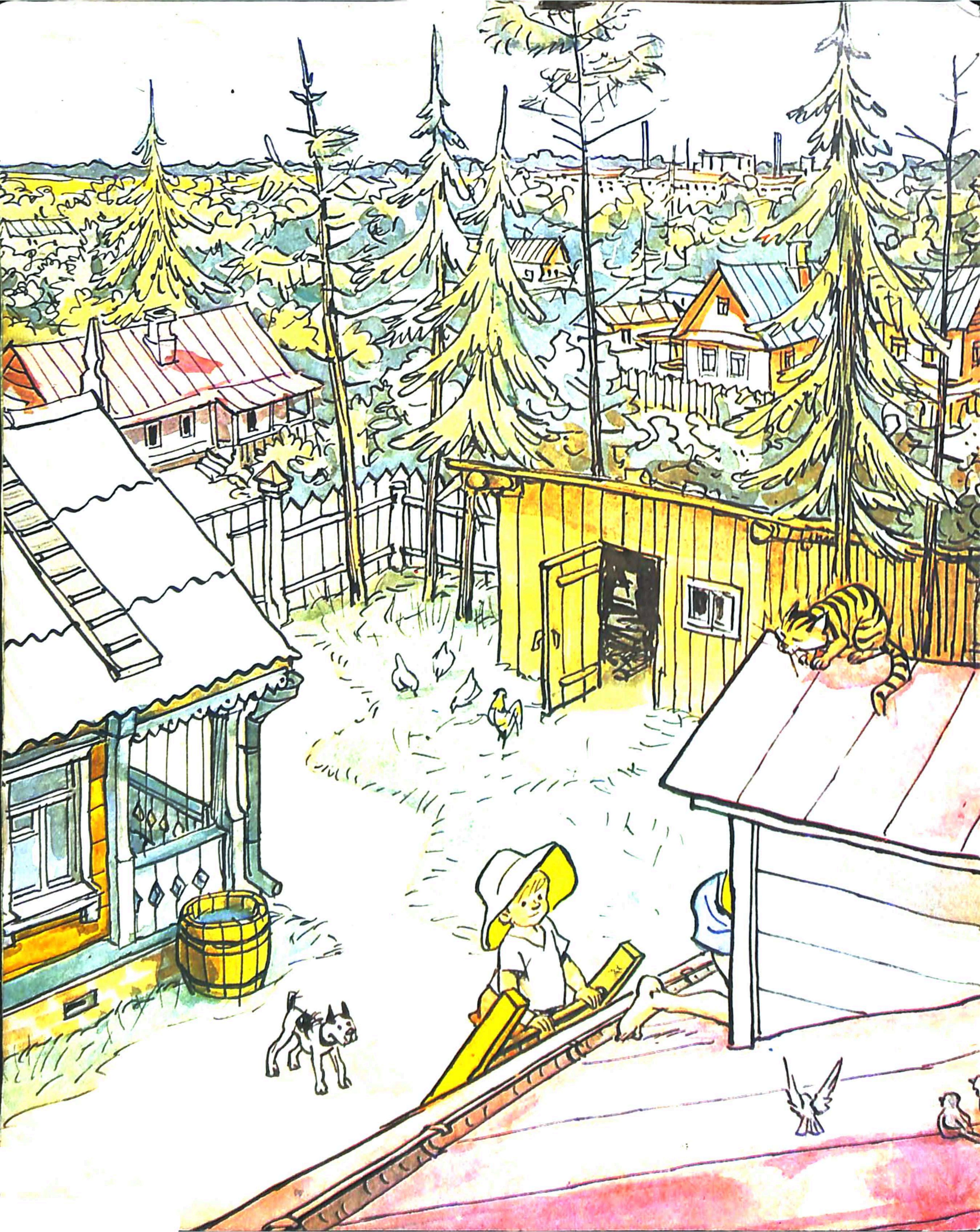
नाना के घर

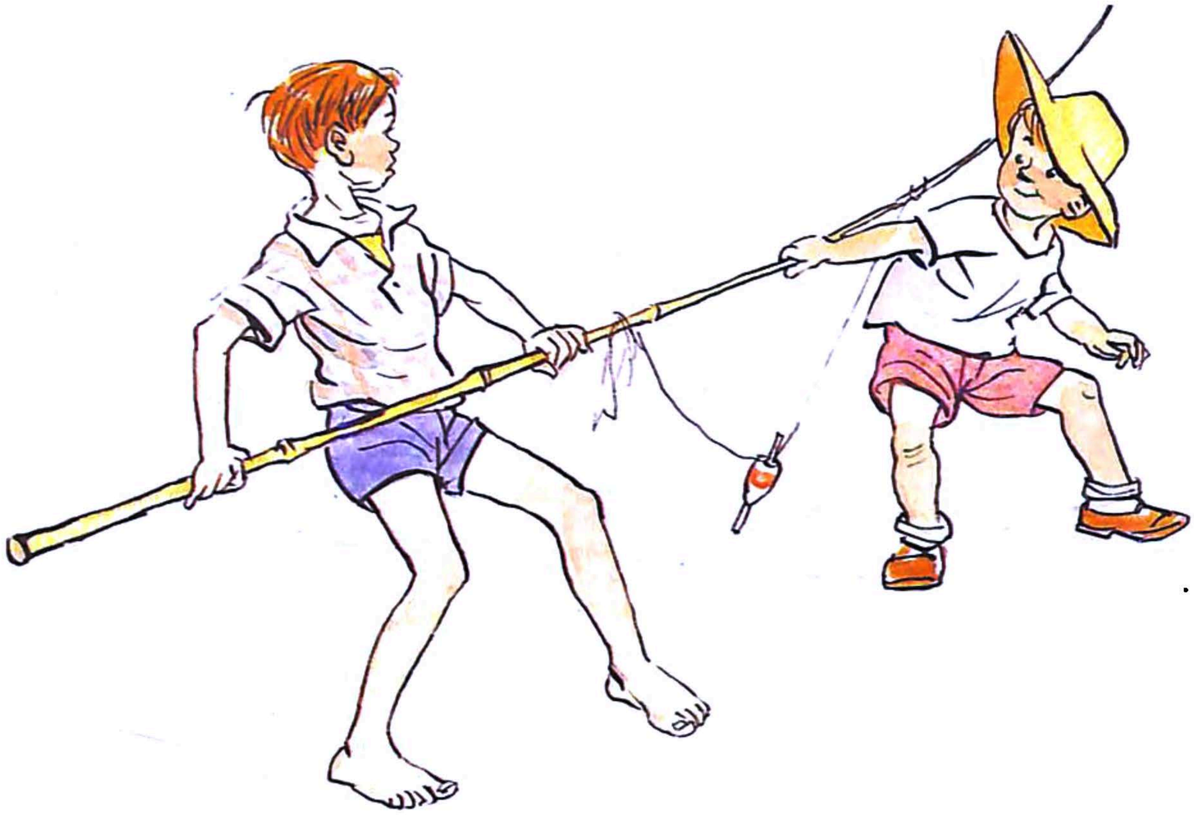
अनुवादक : योगेन्द्र कुमार नागपाल

रादुगा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001





गर्मियों में शूरिक और मैं नाना के घर गये थे। शूरिक मेरा छोटा भाई है। मैं पहली में पढ़ता हूं और शूरिक अभी स्कूल नहीं जाता। पर फिर भी वह मेरा कहना नहीं मानता। अच्छा, नहीं मानता, तो न सही।

नाना के घर पहुंचते ही हमने सारा आंगन, सभी कोठरियां और अटारियां छान मारीं। मुझे कांच का मर्तबान मिला और बूट पालिश की गोल डिबिया। शूरिक को दरवाज़े का पुराना हैंडल मिला और दाएं पांव का बड़ा सा रबड़ का जूता। अटारी पर तो मछली पकड़ने की बंसी की वजह से हमारी लड़ाई होते-होते बची। मुझे ही पहले बंसी दिखी और मैं बोला :

"बंसी मेरी होगी!"

शूरिक ने भी बंसी देखी और चिल्लाने लगा :

"मेरी बंसी! मेरी बंसी!"

मैंने लपककर बंसी उठा ली। शूरिक ने भी उसे पकड़ लिया और मुझ से छीनने लगा। मुझे गुस्सा आ गया, मैंने जो झटका दिया, तो शूरिक छिटककर उधर जा पड़ा और गिरते-गिरते बचा। फिर वह बोला:

"हुं! मैं क्या मरे जा रहा हूं बंसी के पीछे! मेरे पास तो रबड़ का जूता है।"

"जा फिर चाट अपने जूते को, बंसी क्यों छीनता है," मैंने कहा।

मैंने कोठरी में बेलचा ढूंढ़ लिया और ज़मीन खोद-खोदकर केंचुए निकालने लगा – मछली पकड़ने के लिए। उधर शूरिक नानी के पास जाकर माचिस मांगने लगा।

"क्या करेगा माचिस का?" नानी ने पूछा।

वह बोला: "अहाते में आग जलाऊंगा, उस पर रबड़ का जूता रख दूंगा। जूता पिघल जायेगा और उससे रबड़ बन जायेगा!"

नानी चिल्लाई: "वाह रे, क्या सोचा है! आग जलायेगा! इन शरारतों में तो तू सारा घर जला डालेगा। ना भैया, नहीं देने की मैं माचिस-वाचिस! आग से भी कहीं खेला जाता है क्या? कुछ नहीं सुनना चाहती मैं।"



तब शूरिक ने दरवाज़े का हैंडल उठा लिया, जो उसे कोठरी में मिला था, उससे रस्सी बांधी और रस्सी के दूसरे सिरे पर रबड़ का जूता बांध दिया। वह आंगन में इधर-उधर आ जा रहा था – हाथ में हैंडल पकड़े हुए, और जूता उसके पीछे-पीछे ज़मीन पर घिसटता जाता। जिधर शूरिक जाता, उधर ही जूता। वह मेरे पास आया और मुझे केंचुए निकालता देखकर बोला :

"बेकार कोशिश कर रहा है। कुछ नहीं पकड़ पायेगा।"

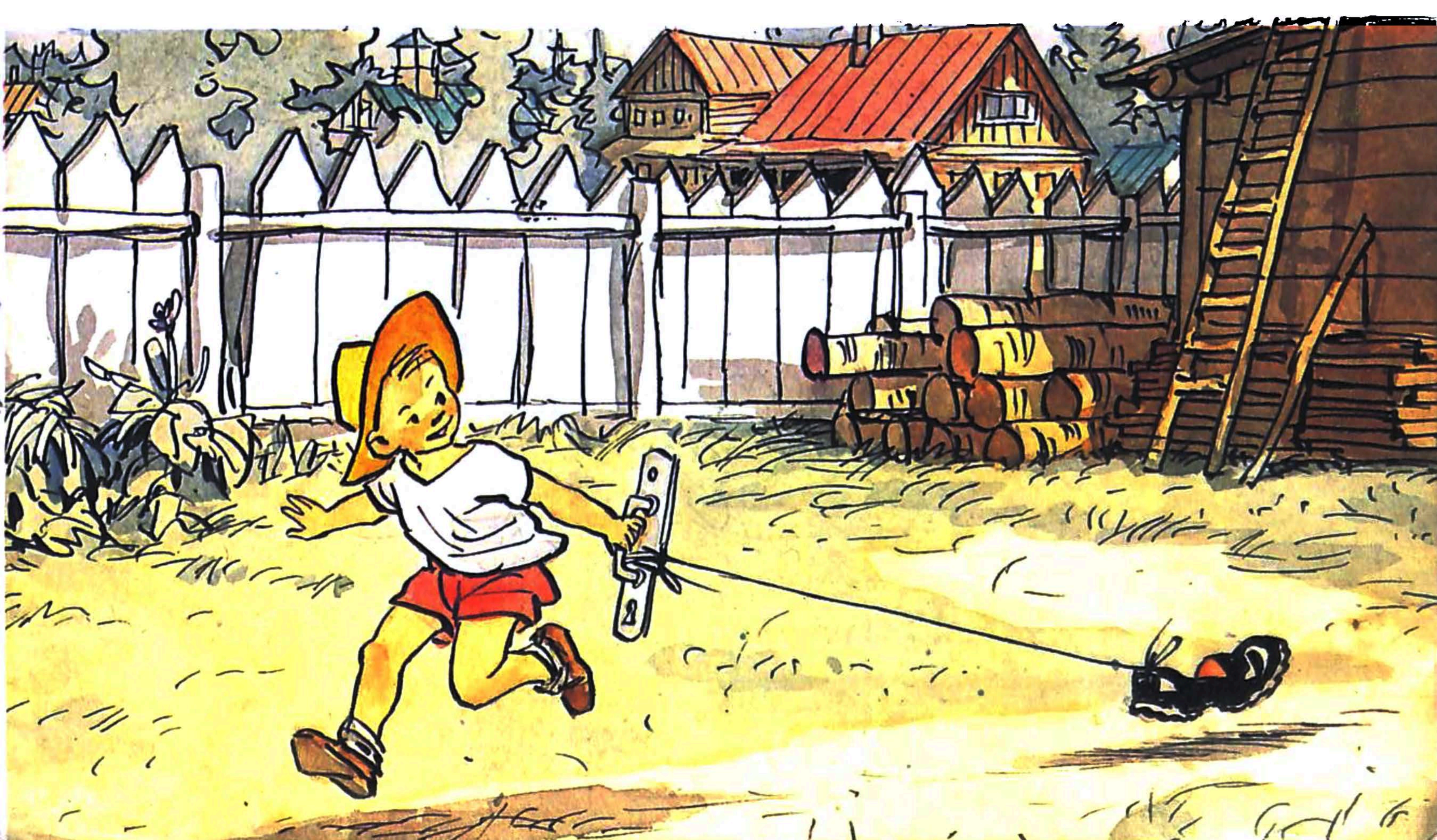
"क्यों?" मैंने पूछा।

"मैं मछलियों पर मंतर फेर दूंगा।"

"जा, फेर ले मंतर।"

मैंने केंचुए ढूंढ़ लिये, उन्हें डिबिया में डाला और जल्दी-जल्दी तालाब की ओर चल दिया।

तालाब हमारे अहाते के पीछे ही था, जहां फ़ार्म का सब्ज़ियों का खेत है। कांटे पर केंचुआ लगाया, किनारे पर बैठ गया और बंसी का कांटा पानी में फेंका। अब मैं



बैठकर बंसी के तिरेंदे को देखने लगा। शूरिक चुपके से आकर मेरे पीछे खड़ा हो गया और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा :

छू मंतर, कला-कलंतर,

भाग जा री मछली, नदी के अंदर!

मैंने सोचा मैं चुप ही रहूंगा, कुछ नहीं बोलूंगा, क्योंकि शूरिक को अगर कुछ कहो तो और भी बुरा होता है।

आख़िर उसने ख़ूब मंतर-वंतर पढ़ लिया, फिर रबड़ का जूता तालाब में फेंका और उसे पानी पर रस्सी से इधर-उधर चलाने लगा। फिर उसे यह खेल सूझा : जूते को तालाब के बीचोंबीच फेंक देता और उस पर कंकड़ मारने लगता, जब तक कि जूता डूब न जाता, फिर रस्सी खींचकर उसे बाहर निकालता।

पहले तो मैं चुपचाप देखता रहा, आख़िर मुझ से रहा न गया, मैं चिल्लाया :

"भाग यहां से! तूने सब मछलियों को डरा दिया!"

वह बोला :

"मछली तो फंसने की नहीं। मैंने मंतर फेर दिया है।"





और फिर से उसने रबड़ का जूता उठाकर तालाब के बीचोंबीच दे फेंका। मैं झट से खड़ा हुआ, और डंडी उठाकर उसकी ओर लपका। वह भागने लगा, उसके पीछे-पीछे रबड़ का जूता उछलता जा रहा था। बड़ी मुश्किल से ही शूरिक मुझ से बच निकला।

मैं फिर से तालाब पर लौट आया और मछली पकड़ने लगा। बड़ी देर तक मैं पानी में बंसी डाले बैठा रहा... दोपहर हो चली थी और मैं बैठा-बैठा तिरंदे को ताक रहा था। कोई मछली फंस ही नहीं रही थी। मुझे शूरिक पर गुस्सा आ रहा था, जी करता था उसकी पिटाई कर डालूं। नहीं, उसके मंतर-वंतर में तो मुझे कोई विश्वास नहीं था, पर पता था कि अगर मछली के बिना लौटा तो वह हंसेगा। मैंने क्या कुछ नहीं किया: किनारे से दूर भी कांटा फेंका और पास भी, ज़्यादा गहराई पर भी और कम गहराई पर भी – पर कुछ बात नहीं बन रही थी।

आख़िर मुझे भूख लग आई और मैं घर चल दिया। दूर से ही मुझे ठक-ठक की आवाज़ सुनाई दी, मानो कोई फाटक पर कुछ ठोक रहा हो।

पास जा कर देखा शूरिक वहां लगा हुआ था। कहीं से उसने हथौड़ी और कीलें ढूंढ़ ली थीं और फाटक पर दरवाज़े का हैंडल लगा रहा था।

"यह किसलिए लगा रहा है?" मैंने पूछा।

मुझे देखकर वह ख़ुश हो गया :

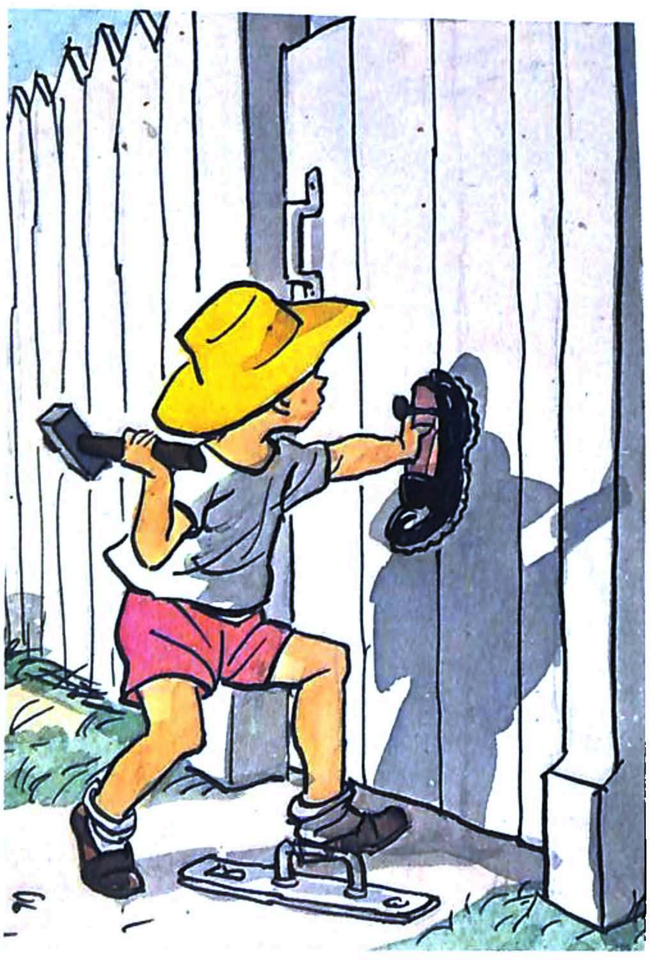
"हा, हा! आ गया मछेरा! कहां है तेरी मछली?"

मैं बोला :

"तू यह हैंडल क्यों लगा रहा है? यहां एक लगा तो हुआ है।"

"कोई बात नहीं। कही एक टूट गया तो दूसरा काम आयेगा," उसने जवाब दिया।

हैंडल लगाने के बाद उसके पास एक कील बची रही। बड़ी देर तक वह सोचता रहा कि उसका क्या करे, उसे यों ही फाटक में ठोक देना चाहता था, पर फिर उसके दिमाग़ में एक बात आई : उसने रबड़ के जूते का तलवा फाटक से सटाया और उसमें कील ठोकने लगा।



"अरे, यह किसलिए?" मैंने पूछा।

"ऐसे ही!"

"ऐसे ही कुछ करना बेवक़ूफ़ी है," मैंने कहा।

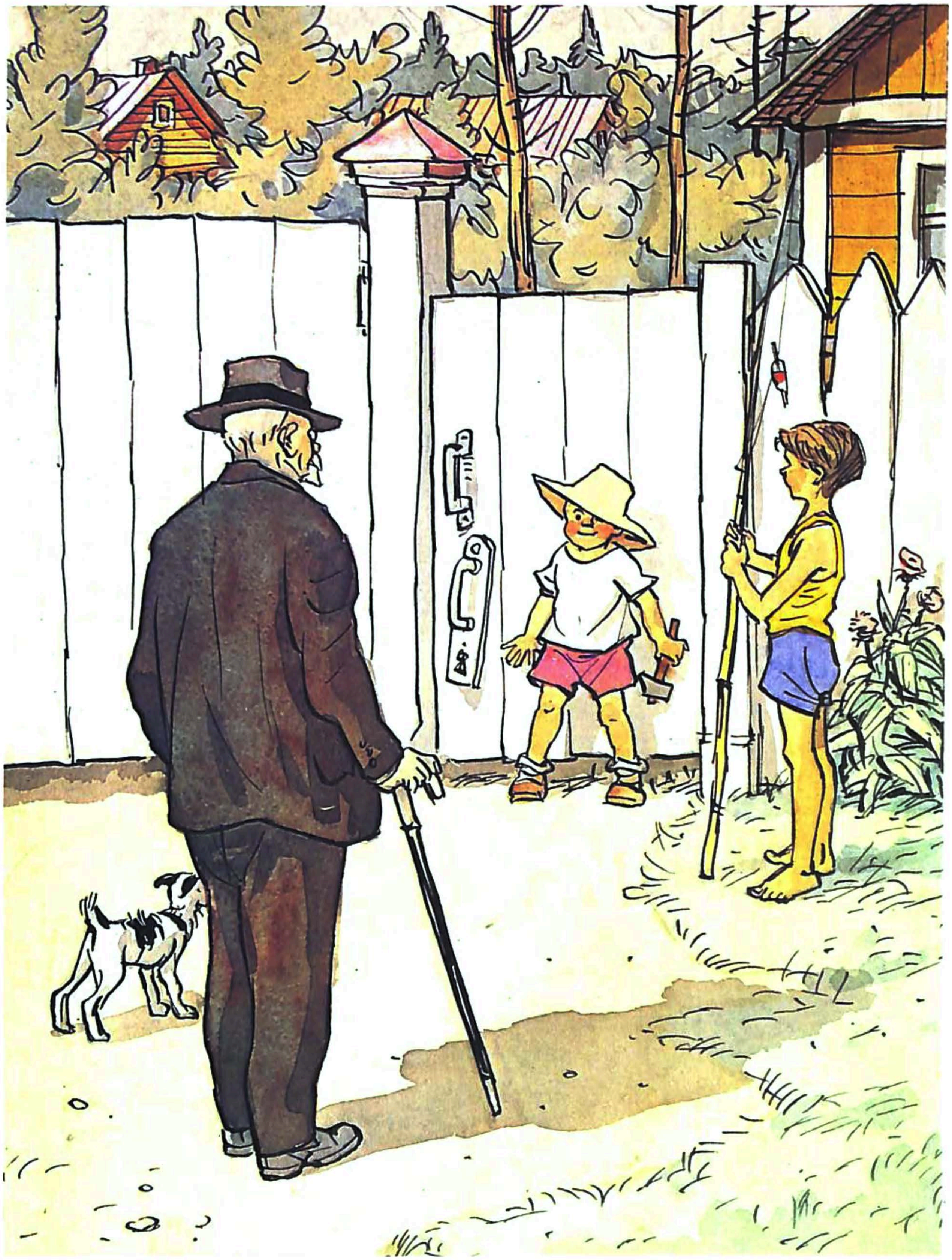
अचानक देखा नाना जी काम से आ रहे थे। शूरिक डर गया और रबड़ का जूता उखाड़ने लगा, पर वह उखड़ता ही नहीं था। फिर वह जूते के सामने खड़ा हो गया।

नाना जी पास आकर बोले :

"शाबाश, बच्चो! आते ही काम में लग गये... यह दूसरा हैंडल लगाने की किसे सूझी?"

"शूरिक को," मैंने कहा।

नाना जी मुस्करा भर दिये और बोले :



"अच्छा, चलो, अब हमारे फाटक पर दो हैंडल होंगे। कभी कोई छोटा सा आदमी आ निकला, तो ऊपर वाले हैंडल तक तो उसका हाथ जायेगा नहीं, सो वह नीचे वाला हैंडल पकड़कर फाटक खोल लेगा।"

तभी नाना जी की नज़र रबड़ के जूते पर पड़ी।

"अरे, यह क्या है?"

मेरी हंसी फूटी। मैंने सोचा, बस अब नाना जी शूरिक की खबर लेंगे। शूरिक का मुंह लाल हो गया, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे।

नाना जी बोले:

"क्या है, भई यह? यह शायद चिट्ठियों के बक्से की जगह लगाया है तुमने। डाकिया आयेगा, देखेगा घर पर कोई नहीं है, चिट्ठी जूते में डाल देगा और आगे चला जायेगा। वाह, कितनी दूर की सूझी है!"

"मैंने अपने आप ही यह सब सोचा है," शूरिक ने डींग मारी।

"सच?"

"हां, बिल्कुल सच बात है!"

"भई वाह, क्या कहने हैं तेरे!"

खाने के वक़्त नाना हैरानी दिखाते हुए नानी को जूते की बात बताते रहे:

"ज़रा सोचो तो, कितना होशियार बच्चा है! कितनी दूर की सूझी है इसे, तुम्हें विश्वास भी नहीं होगा। वह रबड़ का जूता फाटक पर लगा दिया, देखा तुमने? मैं कब से कह रहा हूं कि लैटर बक्स लगाना चाहिए, पर यह ख़्याल नहीं आया कि रबड़ के जूते से ही काम चल सकता है।"

"अच्छा, अच्छा। मैं लैटर बक्स ख़रीद लाऊंगी। अभी यह जूता टंगा रहे," नानी ने मुस्कराते हुए कहा।

खाना खाकर शूरिक बगीचे में चला गया और नाना बोले:

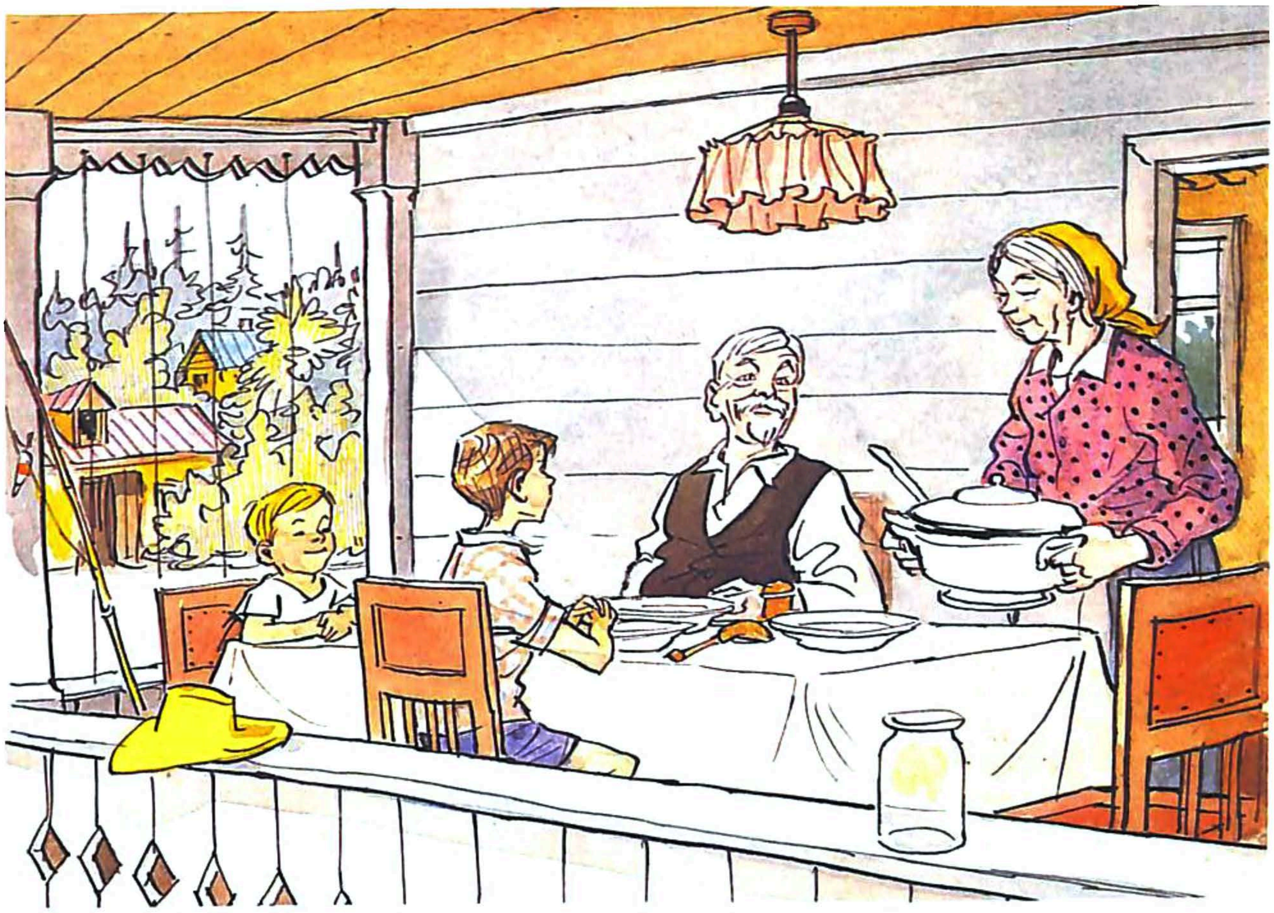
"हां भई, शूरिक ने तो अपनी होशियारी दिखा दी। अब निकोल्का तू बोल, तूने क्या किया है। बता दे, नाना का दिल खुश कर दे!"

"मैं मछली पकड़ने गया था, पर मछली कांटे पर आती ही नहीं," मैंने कहा।

"कहां पकड़ रहा था?"

"तालाब में।"

"अरे-रे... वहां कहां मछली आई? यह तालाब तो अभी थोड़े दिन पहले ही बनाया



गया है। वहां तो अभी मेंढक भी नहीं हैं। तू, भैया, आलस मत कर और नदी पर चला जा। वहां पुलिया के पास बहाव तेज़ है। बस वहीं मछली पकड़ना।"

नाना जी काम पर चले गये। मैंने बंसी उठाई और शूरिक से कहा:

"चल नदी पर चलें। मिलके मछली पकड़ेंगे।"

"आहा! डर गया! अब खुशामद कर रहा है," वह बोला।

"खुशामद काहे की?"

"ताकि मैं मंतर न पढ़ूं।"

"हुं, पढ़ ले, जितना पढ़ना है।"

मैंने केंचुओं वाली डिबिया ली, मछली डालने के लिए कांच का मर्तबान उठाया और चल दिया।

शूरिक भी मेरे पीछे-पीछे आने लगा।

नदी पर पहुंचकर मैं पुलिया से थोड़ी दूर किनारे पर बैठ गया। वहां नदी का बहाव



तेज़ था। मैंने बंसी का कांटा नदी में फेंका।

शूरिक मेरे इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहा था और बुदबुदा रहा था:

छू मंतर, कला-कलंतर,
भाग जा री मछली, नदी के अंदर!

थोड़ी देर चुप रहता और फिर शुरू हो जाता।

छू मंतर, कला-कलंतर...

अचानक मछली कांटे में फंस गई, मैंने झटके से बंसी खींची। मछली हवा में चमचमाई, कांटा उसके मुंह से निकल गया और वह तट पर गिर पड़ी, पानी के ऐन पास ही उछलने लगी।

शूरिक चिल्लाया:

"पकड़ उसे, पकड़!"

लपककर मछली के पास गया और उसे पकड़ने लगा। मछली किनारे पर उछल रही थी और वह पेट के बल ही उस पर गिर रहा था, पकड़ ही नहीं पा रहा था। मछली पानी में वापस भाग ही चली थी।

आख़िर उसने मछली पकड़ ली। मैंने मर्तबान में पानी भरा। शूरिक ने मछली को उसमें डाला और फिर उसे ध्यान से देखने लगा। बोला:





"यह पर्च मछली है। सच, पर्च ही है! देख रहा है कैसी सुरमई धारियां हैं। ख़बरदार, यह मछली मेरी है!"

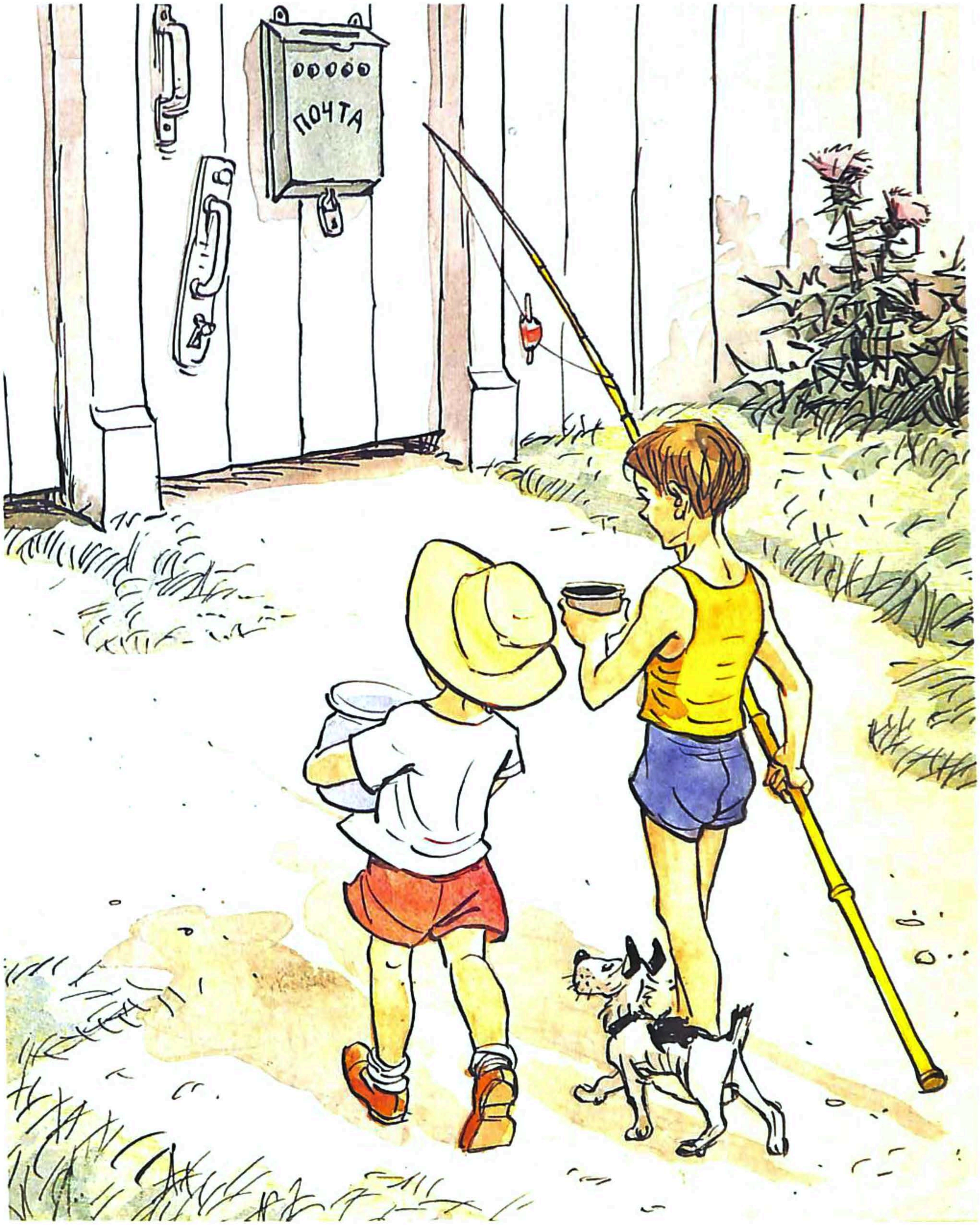
"ठीक है, तेरी सही। अभी हम और मछलियां पकड़ लेंगे।"

उस दिन हम काफ़ी देर तक मछलियां पकड़ते रहे। हमने छह पर्च मछलियां, चार गजन और एक रफ़ मछली भी पकड़ी।

लौटते समय शूरिक ही मर्तबान उठाकर लाया, मुझे हाथ तक नहीं लगाने दिया। वह बहुत ख़ुश था और उसे यह देखकर ज़रा भी अफ़सोस नहीं हुआ कि फाटक पर जूते की जगह हरे रंग का नया लैटर बक्स लगा हुआ है।

"ठीक है। यह बक्सा तो जूते से अच्छा ही है," उसने कहा।




ПОЧТА

वह जल्दी-जल्दी नानी को मछलियां दिखाने अंदर चला गया। नानी ने हमें शाबाशी दी। फिर मैंने शूरिक से कहा :

"देखा, तू मंतर-वंतर पढ़ रहा था। तेरे मंतर बेकार हैं। मैं जादू-टोने में विश्वास नहीं करता।"

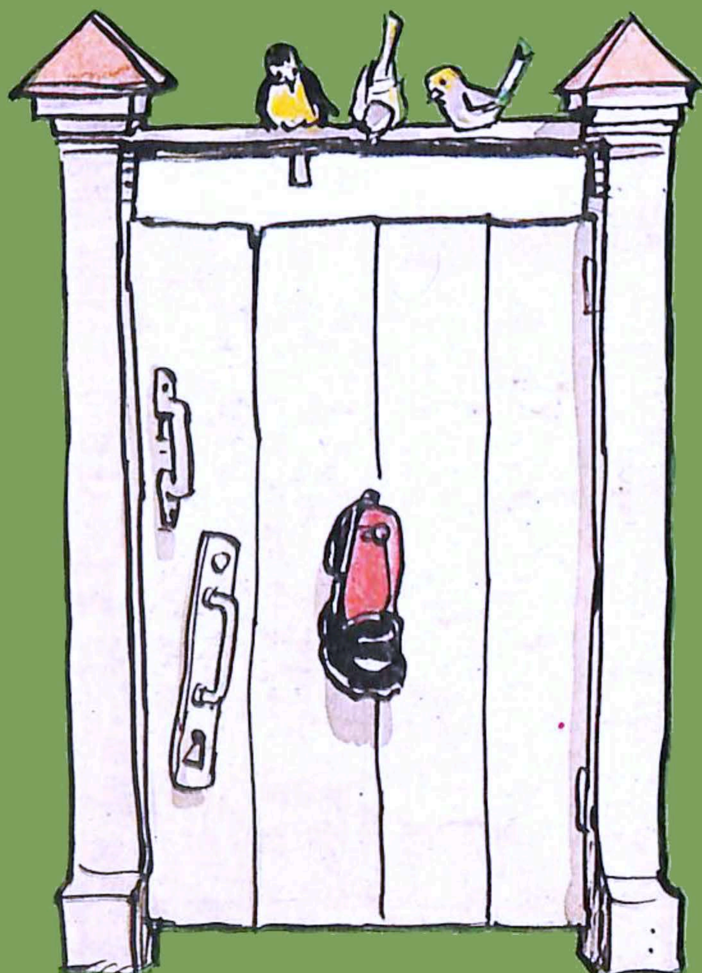
"हुं। तू सोचता है, मैं विश्वास करता हूं? वो तो बिल्कुल जंगली लोग और बूढ़े-बुढ़ियां ही इन बातों में विश्वास करते हैं।"

यह सुनकर नानी को बड़ा मज़ा आया, क्योंकि नानी थीं तो बूढ़ी, पर उन्हें भी जादू-टोने में विश्वास नहीं था।





Н. Носов
ШУРИК В ГОСТЯХ У ДЕДУШКИ
На языке хинди
N. Nosov
VISITING GRANDPA
In Hindi



ISBN 5-05-002169-3